International Journal of Sanskrit Research 2017; 3(4): 152-155

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2017; 3(4): 152-155
© 2017
www.anantaajournal.com
Received: 15-05-2017
Accepted: 16-06-2017

डा० रेनू यादव
संस्कृत विभाग, एम.जी.पी.जी. कॉलेज, फिरोजाबाद, उत्तर प्रदेश, भारत

Correspondence
डा० रेनू यादव
संस्कृत विभाग, एम.जी.पी.जी. कॉलेज, फिरोजाबाद, उत्तर प्रदेश, भारत

संस्कारों की संख्या तथा वर्तमान युग में उनकी प्रासांगिकता

डा० रेनू यादव

प्रस्तावना

इस संस्कार में सभी मनुष्य सुख प्राप्ति के इच्छुक होते हैं किन्तु सुख का जो मूल तत्व है उसका ज्ञान नहीं करते । भारतीय संस्कृति संस्कार प्रधान है। संस्कृति तथा संस्कार दोनों एक मूल से ही विकसित हैं किन्तु दोनों के अर्थों में अन्तर है । संस्कार कार्य है तथा संस्कृति कारण। प्रस्तुत शोध पत्र का प्रतिपाद्य है संस्कार क्या है, इसकी संख्या कितनी है, इसका हमारे जीवन में क्या प्रयोजन है, और हमारे जीवन में होना कितना आवश्यक है ।

मनुष्य का जीवन संस्कार से ही परिशुद्ध होता है । संस्कार के द्वारा उसका भौतिक और आध्यात्मिक जीवन निखर उठता है । हिन्दू जीवन पद्धति में वर्णधर्म और आश्रमधर्म की व्यवस्था शास्त्रों द्वारा विहित है । वर्ण तथा आश्रम के पूर्ण समन्वय व सफलता के लिए शास्त्रकारों ने संस्कारों की व्यवस्था की है । प्राणिजीवन शास्त्र तथा जीव विज्ञान भी इस बात को स्वीकार करता है कि मानव के परिष्कृत एवं सुसंस्कृत रूप के लिए संस्कार उसी प्रकार आवश्यक है जैसे वनस्पतियों के समुचित विकास के लिए उनको संस्कारित करना । अपरिष्कृत को परिष्कृत कर उसमें नवीनता व विशेषता लाना या विलक्षण उत्पन्न करना ही संस्कार है।

संस्कार शब्द के व्युत्पत्ति जन्य अर्थ से भी यही ध्वनि निकलती है – 'संस्करणं संस्कारः। 'भीमांसक यज्ञाङ्गभूत पुरोडाश आदि की विधिवत् शुद्धि से इसका आशय समझते हैं। [2]

संस्कारों की संख्या

मानव जीवन के लिए कितने संस्कार आवश्यक है इस विषय में मतभेद है ।

पारस्पर गृह्मसूत्र के अनुसार–1 विवाह, 2 गर्भाधान 3. पुंसवन 4. सीमन्तोत्रयन 5 जातकर्म 6 नामकरण 7 निष्क्रमण 8 अन्नप्रत्तन 9 चूड़ाकरण 10 उपनयन 11 केशान्त 12 समावर्तन 13 अन्त्येष्टि ।3

आश्रवलयन गृह्मसूत्र– 1 विवाह 2 गर्भाधान 3 पुंसवन 4 सीमन्तोन्नयन 5 जातकर्म 6 नामकरण 7 चूड़ाकर्म 8 अन्नप्राशन 9 उपनयन 10 समावर्तन 11 अत्न्येष्टि । [4]

बौधायन गृह्मसूत्र– 1 विवाह 2 गर्भाधान 3 पुंसवन 4 सीमन्तोन्नयन 5 जातकर्म 6 नामकरण 7 उपनिष्क्रमण 8 अन्नप्राशन 9 चूड़ाकर्म 10 कर्णवेध 11 उपनयन 12 समावर्तन 13 पितृमेध ।5

मनु के अनुसार– 1 गर्भाधान 2 पुंसवन 3 सीमन्तोन्नयन 4 जातकर्म 5 नामधेय 6 निष्क्रमण 7 अन्नप्राशन 8 चूड़ाकरण 9 उपनयन 10 केशान्त 11 समावर्तन 12 विवाह 13 श्मशान । [6]

गौतमस्मृति में 40 संस्कारों का विवेचन है– 1 गर्भाधान 2 पुंसवन 3 सीमन्तोन्नयन 4 जातकर्म 5 नामकरण 6 अन्नप्राशन 7 चौल, 8 उपनयन, 9–12 चार वेदव्रत, 13 स्नान, 14 सहधर्मचारिणी संयोग, 15–19 पमहायज्ञ, 20–26 अष्टक, पार्वण, श्राद्ध, श्रावणी, आग्रहायणी, चैत्री, आश्रयुजी, 27–33 अग्न्याधेय, अग्निहोत्र, दर्शपौर्णमास्य, चातुर्मास्य, आग्रयाणेष्टि, निरुढ़–पशुबन्ध, सौत्रामणि, 34–40 अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम, उक्थ षोडशी, वाजपेय, अतिरात्र, आप्तोर्याम । [7]

व्यासस्मृति – 1 गर्भाधान, 2 पुंसवन, 3 सीमन्तोन्ननयन, 4 जातकर्म, 5 नामक्रिया, 6 निष्क्रमण, 7 अन्नप्राशन, 8 वपनक्रिया, 9 कर्णवेध, 10 व्रतादेश, 11 वेदारम्भ, 12 केशान्त, 13 स्नान, 14 उद्धाह, 15 विवाहाग्निपरिग्रह, 16 प्रेताग्नि संग्रह । [8]

परवर्ती स्मृतियों में सोलह संस्कारों के नाम दिये गये हैं । [9] वर्तमान में भी संस्कारों की संख्या सोलह ही मानी गई है । स्वामी दयानन्द सरस्वती तथा पण्डित भीमसेन शर्मा ने सोलह संस्कारों को ही लोकप्रिय तथा आवश्यक माना है । संस्कारों की गणना में अन्त्येष्टि संस्कार गृह्यसूत्रों धर्मसूत्रों और स्मृतियों द्वारा उपेक्षित रही थी । इसका कारण ये समझा जाता है कि अन्त्येष्टि एक अशुभ संस्कार है जिसका शुभ संस्कारों के साथ वर्णन उचित नहीं समझा गया । चूँकि मृत्यु के साथ ही व्यक्ति की जीवन की कथा का अन्त हो जाता है और मरणोत्तर संस्कारों का व्यक्तित्व के परिष्कार पर कोई

प्रत्यक्ष प्रभाव प्रतीत नहीं होता, इसलिए भी उसकी उपेक्षा की गई होगी । किन्तु इतना होते हुए भी अन्येष्टि एक संस्कार के रूप में स्वीकृत तो था ही। अन्त्येष्टि समन्त्रक संस्कारों में एक है और इसका सम्पादन भी अन्त्येष्टि सम्बन्धी वैदिक मन्त्रों के द्वारा होता है । [10]

षोडश संस्कारों का परिचय। [11]

1. गर्भाधान– गृहस्थ जीवन में प्रवेश के उपरान्त प्रथम कर्त्तव्य के रूप में इसे मान्यता प्राप्त है । इसका प्रचलन वैदिक काल से हुआ था ।[12] सांस्कृतिक रूप से गर्भाधान संस्कार अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यहाँ हम उन व्यक्तियों को पाते हैं जो अपनी स्त्री के समीप सन्तति–उत्पत्ति रूप एक निश्चित उद्देश्य को लेकर श्रेष्ठ से श्रेष्ठ सन्तान की उत्पत्ति के लिए एक पूर्व नियत रात्रि में निश्चित प्रकार से ऐसी धार्मिक परित्रता को लेकर जाते थे जो भावी संतान को निर्मल करती थी।
इसका प्रचलन वैदिक काल से हुआ था ।[13] सास्कृतिक रूप से गर्भाधान संस्कार अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यहाँ हम इन व्यक्तियों को पाते हैं जो अपनी स्त्री के समीप सन्तति–उत्पत्ति रूप एक निश्चित उद्देश्य को लेकर श्रेष्ठ से श्रेष्ठ सन्तान की उत्पत्ति के लिए एक पूर्व नियत रात्रि में निश्चित प्रकार से ऐसी धार्मिक पवित्रता को लेकर जाते थे जो भावी संतान को निर्मल करती थी।

2. पुंसवन– यह संस्कार गर्भ के तीसरे महीने में गर्भस्थ शिशु के समुचित विकास की कामना से किया जाता था ।[14] पुराणों में यह वर्णित है कि तेजस्वी पुत्र की प्राप्ति के लिए यह संस्कार किया जाता था ।[15] पुंसवन का अभिप्राय सामान्यतः उस कर्म से था जिसके अनुष्ठान से पुरुष सन्तान का जन्म होता हो । पुंसवन संस्कार तब होता था जब बालक के भौतिक शरीर का निर्माण प्रारम्भ होता था। 'सुपर्णोऽसि' इस कथन के द्वारा गर्भस्थ शिशु के स्वस्थ सबल होने की कामना की जाती थी । इसके अतिरिक्त इस संस्कार के अवसर पर उच्चारित तथा पठित मंत्रों के प्रभाव से व्यक्ति में विगत जन्मों को स्मरण करने की क्षमता का संचार होता था ।

3. सीमन्तोन्नयन– सीमन्तोन्नन्यन संस्कार का आयोजन गर्भ के चौथे महीने में किया जाता था। अर्थात् जब बच्चे के मानसिक शरीर का निर्माण प्रारम्भ हो जाता तब सीमन्तोन्नयन संस्कार किया जाता था। इस संस्कार में गर्भिणी स्त्री के केशों (सीमन्त) को ऊपर उठाया (उन्नयन) जाता था। यह संस्कार किसी पुरुष नक्षत्र के समय सम्पन्न किया जाता था। इस संस्कार से गर्भवती स्त्री के चित्त में एक सुदृढ़ भावना उत्पन्न हो जाती थी जो उसमें आत्मविश्वास और संतान के प्रति कर्त्तव्य का समावेश करती थी।[15]

4. जातकर्म– पुत्रजन्म के समय जातकर्म संस्कार होता था। इस बारे में मनुस्मृति में कहा गया है– 'मन्त्रवत्प्राषन चास्य हिरण्यमधुसर्पिणाम्।'[16] अर्थात् नाभि छेदन के पहले जातकर्म संस्कार होता था। बच्चे को सोना, घृत तथा मधु का गृह्योक्त मन्त्रों से प्राशन कराया जाता था। अनिष्टकारी शक्तियों का कुप्रभाव बच्चे पर न पड़े इस उद्देश्य से यह संस्कार किया जाता था।

5. नामकरण– नामकरण संस्कार शिशु के जन्म के बाद दूसरा माना जाता है। आचार्यों ने शिशु जन्म के बाद दस दिनों तक सूत्तक माना है उसके बाद नामकरण संस्कार की प्रक्रिया सम्पन्न करने का विधान है । मनुस्मृति में इस बारे में कहा गया है–

नामधेयं दशम्यां तु द्वादश्यां वाऽस्य कारयेत् ।
पुण्ये तिथौ मुहूर्ते वा नक्षत्रे वा गुणान्विते ।।[17]

इस संस्कार में किसी शुभ और मंगल घड़ी में देवपूजन और यज्ञाहुति का आयोजन होता था । तत्पश्चात् शिशु के दाहिने कान में पिता उसका नाम कहता था ।

6. निष्क्रमण– यह संस्कार जन्म के चौथे मास में किया जाता था । जन्म के बाद जब पहली बार सन्तान को घर से बाहर निकाला जाता है तो निष्क्रमण कहा जाता था। यह संस्कार जन्म के चौथे मास में होता था ।[18] उक्त मास में किसी मंगलमय तिथि को शुभ मुहुर्त में पूजा हवन आदि सम्पन्न कर सन्तान को दर के बाहर प्राकृतिक वातावरण में लाया जाता था। शिशु को माँ की गोद में देकर सर्वप्रथम उसे सूर्य का दर्शन कराया जाता था। इस संस्कार का व्यावहारिक अर्थ यह प्रतीत होता है कि एक निश्चित समय के पश्चात् बालक को दर के बाहर उन्मुक्त वायु में लाना चाहिए और यह अभ्यास निरन्तर प्रचलित रहना चाहिए।

7. अन्नप्राषन– अन्नप्राशन संस्कार शिशु के पश्चात् छठे मास में किया जाना चाहिए । मनु का कहना है कि– 'षष्ठेऽन्नप्राशनं मासि यद्वेष्टं मंगलं कुले।'[19] अन्नप्राशन संस्कार के दिन सर्वप्रथम यज्ञीय भोजन के पदार्थ अवसरोचित वैदिक मंत्रों के साथ स्वच्छ किए और पकाए जाते थे और भोजन तैयार हो जाने के बाद वाग्देवता को आहुति की जाती थी तथा शिशु की समस्त इन्द्रियों की सन्तुष्टि के लिए प्रार्थना की जाती थी जिससे वह सुखी और सन्तुष्ट जीवन व्यतीत कर सके। इस संस्कार का महत्व था कि माता उचित समय पर शिशु को अपना दूध पिलाना बन्द कर दे।

8. **चूड़ाकर्म–** शिशु के सिर के केश को जब सर्वप्रथम काटने का आयोजन किया जाता था तब यह संस्कार चूड़ाकर्म कहा जाता था । इसकी अपर संज्ञा मुंडन भी है। आश्रावलयन गृह्यसूत्र में कहा गया है– 'तेन ते आयुषे वपामि सुश्लोकाय स्वर भ्यौ' [20] इस संस्कार का प्रयोजन दीर्घ आयु तथा कल्याण की प्राप्ति था, इस संस्कार में शिखा को छोड़कर सिर के केश कटवा दिये जाते थे । प्रायः यह संस्कार देवालायों में सम्पन्न किए जाते थे जहाँ विधिपूर्वक हवन पूजन के साथ मातृकाओं और देवों की स्तुति की जाती थी। हिन्दू समाज में आज भी मुण्डन संस्कार का आयोजन बड़े ही विधि–विधानपूर्वक तथा प्रसन्नता के साथ किया जाता था ।

9. **कर्णवेध–** संस्कार के रूप में कर्णवेध तथा उससे सम्बन्धित विधि–विधानों का उद्धव आधुनिक काल में हुआ, गृह्यसूत्रों में इसका उल्लेख नहीं पाया जाता। किन्तु मध्य युग में यह अनिवार्य संस्कार था । देवल ने कहा है कि जिस ब्राह्मण का कर्णवेध न हुआ हो उसे श्राद्ध में आमंत्रित नहीं करना चाहिए, क्योंकि उसको देखने वाले का पुण्य नष्ट हो जाता है। [21] यह संस्कार शिशु को सुशोभित तथा उसे अलंकृत करने के निमित्त किया जाने वाला धार्मिक संस्कार था जो सन्तान के जन्म के सातवें या आठवें मास में किया जाता था। किसी शुभ दिन के पूवार्द्ध में यह संस्कार देव पूजन आदि धार्मिक क्रियाओं के साथ सम्पन्न किया जाता था।

10. **विद्यारम्भ–** बालक की अवस्था जब पाँच वर्ष की हो जाती थी, तब उसे शिक्षा प्रदान करने की व्यवस्था की जाती थी, अर्थात् पहले पहल बच्चे द्वारा वर्णाक्षर सीखा और पढ़ा जाना विद्यारम्भ संस्कार कहा जाता था। यह संस्कार प्रायः चौल संस्कार के बाद ही किया जाता था। किसी शुभ मुहुर्त में शिक्षक के द्वारा पट्टी पर ऊँ तथा स्वस्तिक के साथ वर्णमाला स्वर तथा व्यंजन लिखे जाते थे । सूर्य के उत्तरायण रहने पर शुभ दिन और शुभ मुहुर्त में विनायक, सरस्वती, बृहस्पति देवता की पूजा की जाती थी । पूजा हवन सम्पन्न कर अक्षरारम्भ कराया जाता था।

11. **उपनयन–** हिन्दू समाज में उपनयन संस्कार का अत्यधिक महत्व है। इस संस्कार की सम्पन्नता से बालक वर्ण का सदस्य बनता था और वह द्विज कहलाता था । ब्राह्मणकाल में उपनयन को पूर्णतः कर्मकाण्ड का रूप मिल गया और इसकी विधि निश्चित हो गई । यह एक ऐसा संस्कार था जो विद्या सीखने वालों को गायत्री मंत्र सिखाकर किया जाता था। किन्तु अब इसका

शिक्षामूलक अर्थ समाप्त हो गया है तथा इसका प्रयोग एक विशिष्ट संस्कार 'यज्ञोपवीत' के लिए किया जाता है । इसके लिए उचित समय निर्धारित है जैसे ब्राह्मण के लिए जन्म से लेकर आठ वर्ष तक, क्षत्रिय के लिए ग्यारहवाँ वर्ष, वैश्य के लिए बारहवाँ वर्ष ।[22] धर्मशास्त्रों में वर्णन है कि ब्राह्मण अगर बिना यज्ञोपवीत पहने भोजन करता है तो उसे प्रायश्चित करना चाहिए। वस्तुतः हिन्दू समाज में उपनयन संस्कार का कल भी और आज भी बहुत ही महत्व है। पहले मनुष्य की सामाजिक और शैक्षणिक उपलब्धियाँ इस संस्कार के सम्पन्नता के पश्चात् ही सम्भव थी।

12. **वेदारम्भ–** संस्कार के रूप में इसका उल्लेख सर्वप्रथम व्यासस्मृति में उपलब्ध होता है।[23] इस संस्कार के द्वारा चारों वेदों के अध्ययन के लिए नियम निर्धारित किये जाते हैं । वेदारम्भ संस्कार करने के लिए अग्नि स्थापन, हवन, मातृका पूजन आदि कृत्य किये जाते थे।

13. केशान्त– यह संस्कार विद्यार्थी के सोलहवें वर्ष में सम्पन्न किया जाता था। इस संस्कार में शिखा सहित सम्पूर्ण सिर का मुण्डन होता था । इस विधि की समाप्ति पर ब्रह्मचारी गुरू को एक गौ दान में देता था।

14. समावर्तन– समावर्तन संस्कार शिक्षा समाप्ति के बाद करने का विधान है। समावर्तन का अर्थ है वेदाध्ययन के पश्चात् गुरुकुल से घर की ओर प्रत्यावर्तन। समावर्तन के समय ब्रह्मचारी गुरू को यथाशक्ति दक्षिणा देते थे तथा घर जाने की अनुमति लेते थे।[24] समावर्तन संस्कार केवल उन्हीं का किया जाता था जो अपने सम्पूर्ण अध्ययन की समाप्ति तथा व्रतों का पालन कर चुकते थे। प्राचीनकाल का समावर्तन आज के उपाधि वितरण समारोह के समान था। आजकल जो परीक्षा में उत्तीर्ण दोषित होते हैं वे ही उपाधि वितरण समारोह में सम्मिलित हो सकते हैं।

15. विवाह– हिन्दू संस्कृति में विवाह का महत्वपूर्ण स्थान है। विवाह के बाद ही व्यक्ति जीवन के विस्तृत क्षेत्र में प्रवेश करता है। गृहस्थ जीवन का प्रारम्भ यहीं से माना जाता है। हिन्दू धर्मशास्त्रों में विवाह को धार्मिक संस्कार माना गया है, इसमें धर्म का स्थान प्रधान है सामाजिकता तथा वैधानिकता का कम। यज्ञ, होम, मन्त्रपाठ, देवताओं का आवाहन तथा वेद मन्त्रों के साथ वैवाहिक क्रिया सम्पन्न करना हिन्दू विवाह संस्कार के प्रधान अंग हैं । मनु ने विवाह के आठ प्रकारों की चर्चा की है– 1 ब्राह्म 2 दैव 3 आर्य 4 प्राजापत्य 5 आसुर 6 गन्धर्व 7 राक्षस 8 पिशाच।[25]

16. अन्त्येष्टि– अन्त्येष्टि मनुष्य का वह अन्तिम संस्कार है जो मृत्यु के बाद किया जाता है। इसमें मृत व्यक्ति के पार्थिव शरीर का दाह संस्कार किया जाता है । दाह क्रिया के पहले तथा बाद अनेक धार्मिक कृत्य होते हैं। शवदाह के बाद अशौचकाल प्रारम्भ होता है जिसकी अवधि साधारणतः तेरह दिनों की होती है। पिण्डदान, श्राद्धकर्म और ब्राह्मण भोजन के बाद मृतक का परिवार शुद्ध माना जाता है। अन्त्येष्टि क्रिया से सम्बन्धित ये नियम पूर्व में भी थे और आज भी है। अन्त्येष्टि संस्कार होने से व्यक्ति अपने उक्त संस्कारों के द्वारा परलोक में विभिन्न परिस्थितियों में विजय प्राप्त कर सकता है। [26]

किन्तु आधुनिक समय में विवाह, उपनयन, अन्नप्राशन, नामकरण तथा अन्त्येष्टि नामक संस्कारों को छोड़कर अन्य संस्कार बहुधा नहीं किये जा रहे हैं। इनमें भी नामकरण तथा अन्नप्राशन मनाए तो जाते हैं, किन्तु बिना मन्त्रोचारण तथा पुरोहित को बुलाए । साधारणतया लोग समझते हैं कि प्राचीन काल की प्रत्येक बात अन्धविश्वासपूर्ण है। किन्तु ऐसा है नहीं, लोगों को धर्म तथा संस्कार में छिपे हुए अनुशासन, नैतिकता तथा धैर्य तथा कर्मों के उद्देश्य को समझना चाहिए।

संस्कारों का प्रयोजन

संस्कारों का उद्देश्य मनुष्यों के लोक तथा परलोक दोनों को सुधारना है। याज्ञवल्क्य का मत है कि संस्कार करने से बीज गर्भ से उत्पन्न दोष मिट जाते हैं।[27] संस्कार करने के प्रमुख प्रयोजन निम्न हैं–

1. अशुभ प्रभावों का प्रतिकार– संस्कार हमारे ऊपर से अशुभ शक्तियों से बचाता है। यथा संस्कार करने से शिशु के ऊपर कोई भी अवांछित शक्तियाँ अपना प्रभाव नहीं डाल सकतीं।[28] विद्यार्थी जीवन की समाप्ति के समय जब दण्ड का त्याग कर दिया जाता था तो समावर्तन संस्कार के अवसर पर वह दृढ़तर वंश दण्ड को धारण करता था। यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि पशुओं और शत्रुओं से रक्षा के लिए ही नहीं वरन् राक्षसों तथा पिशाचों से रक्षा के लिए भी संस्कार आवश्यक है।[29]

2. अभिष्ट फल की प्राप्ति– संस्कारों का भौतिक उद्देश्य है धन धान्य पशु सन्तान दीर्घजीवन सम्पत्ति शक्ति और बुद्धि की प्राप्ति। वस्तुतः संस्कार गृह्यकृत्य थे और स्वभावतः उनके अनुष्ठान के समय घरेलू जीवन के लिए आवश्यक सभी वस्तुओं की भावना देवों से की जाती थी और देवता उनकी आकांक्षाओं की पूर्ति किया करते थे।[30] मनु के अनुसार स्वाध्याय, व्रत, होम, तर्पण, यज्ञ (पंचमहायज्ञ) के अनुष्ठान से यह शरीर ब्रह्म प्राप्ति बन जाता है तथा द्विजों को गर्भादान आदि संस्कार वैदिक कर्मों के साथ करना चाहिए जो इहलोक तथा परलोक दोनों को पवित्र करते हैं।[31]

3. नैतिक तथा आध्यात्मिक उत्थान– आध्यात्मिकता हिन्दुत्व की एक प्रमुख विशेषता है अतः संस्कार व्यक्ति के आन्तरिक व आध्यात्मिक तत्वों के ब्राह्य प्रतीक थे । संस्कार सम्पन्न करने से व्यक्ति ऐसा समझते थे जैसे कोई अदृश्य वस्तु उनके समस्त व्यक्तित्व को पवित्र कर रही हो । यजुर्वेद में कहा है कि संस्कार के बिना मनुष्य आत्मशान्ति तथा आनन्द से वंचित रहते हैं।[32] अतः संस्कारों का उद्देश्य व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास करना था, जिससे वह अपने को मानवीय तथा अतिमानव शक्तियों से पूर्ण बना सके। संस्कार मानव के परिष्कार तथा शुद्धि में सहायता पहुँचाते थे, मनुष्य की भौतिक तथा आध्यात्मिक महत्वाकांक्षाओं को गति देते तथा अन्त में उसे जटिलताओं तथा समस्याओं के संसार से सरल तथा सानन्द मुक्ति प्रदान करते थे। गर्भाधान से लेकर अन्त्येष्टि तक के संस्कार व्यवहार में मानव जीवन तथा उसके विकास की क्रमबद्ध योजना का कार्य करते थे । गर्भाधान से उपनयन तक संस्कार शरीर के संस्कार परक होते हैं जिससे पात्रता अर्जित होती है क्योंकि सत्कर्म के अभ्यास से ही संस्कार ह्रदय में स्थित होते हैं:–

प्राप्यपुण्यकृतां लोकानुषित्वा शाश्वती समाः ।
शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते ।।[33]

अथर्ववेद में वेदाध्ययन की प्रशंसा करते हुए कहा गया है कि ब्रह्मचर्य अच्छे गार्हस्थ्य की आधारशिला है। अपने शिष्य को उत्तम सभ्य बनाने के लिए आचार्य उसके लिए सतत चिन्तित रहते थे। पुनः विवाह संस्कार के बारे में कहा गया है कि यह केवल स्त्री पुरुष के साथ रहने का रूप नहीं है, वरन् विवाह के उपरान्त पति–पत्नी अपने धार्मिक और कौटुम्बिक उत्तरदायित्व की ओर जागरूक हों अर्थात सामाजिक तथा धार्मिक कर्तव्यों के प्रति सचेत हों।[34] यही वेदों का आदर्श है, भारतीय परिवार की आदर्श आधारशिला है, समाज में एकता बनाने का मार्ग है, यह आदर्श वैश्विक है सार्वत्रिक है तथा सदा ध्यान में रखने योग्य है ।

भारतीय संस्कृति के अनुसार आत्मसाक्षात्कार या ईश्वर की प्राप्ति या मोक्ष की प्राप्ति ही जीवन का परम लक्ष्य कहा जाता है । गर्भाधान से लेकर अन्त्येष्टि तक के सारे संस्कार और गुरुकुल प्रवेश से लेकर मृत्यु तक की सारी चेष्टाऐं इन्हीं में निहित हैं ।

अतः संस्कार सम्पन्न व्यक्ति से ही राष्ट्र का सर्वांगीण विकास हो सकता है । समाज की सव्यवस्था के लिए सुख–शान्ति की

अभिवृद्धि के लिए संस्कार सम्पन्न व्यक्ति की आवश्यकता है । अतः सर्वथा सर्व प्रकार से जब तक संसार में संस्कारों का पालन नहीं होता है तब तक 'सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः' की कल्पना भी नहीं कही जा सकती है । जब विकास सिद्ध है, उन्नयन निश्चित है, तो उसकी उपलब्धि के लिए सोपान भी होने चाहिए और आर्य जाति में संस्कारों की प्रतिष्ठा इन्हीं सोपान के रूप में हुई है । हमारे शरीर और आत्मा दोनों स्वस्थ रहें, इसके लिए हमें अपनी संस्कृति और संस्कार दोनों को जीवित रखना होगा । अतः यज्ञों में या संस्कारों में जो नियम किये जाते हैं अर्थात् उन अवसरों पर देवताओं को आहुति प्रदान कर उन्हें अपने अनुकूल बनाकर जो अभिष्ट सिद्धि की जाती है इससे विश्व संरचना के सिद्धान्त को भी विकसित किया जाता है । आज का मानव जो अपनी सुख तथा शान्ति के लिए इधर से उधर भटकता फिरता है मन की परेशानियों को दूर करने के लिए मनोवैज्ञानिक की सहायता लेता है तो केवल संस्कार ही मानव के अंदर वह शान्ति उत्पन्न करने में सक्षम है ।

आजकल बड़े–बड़े बोर्ड पर विज्ञापन देकर दूरदर्शन, आकाशवाणी के द्वारा भोजन से पूर्व हाथ धोना आदि की शिक्षा दी जाती है और लोग इनका अनुसरण करते हैं । अगर वे हमारे शास्त्रों में वर्णित संस्कारों का थोड़ा भी अध्ययन कर लें तो इसकी आवश्यकता नहीं होगी । तो संस्कार वे क्रियाऐं तथा रीतियाँ हैं जो योग्यता प्रदान करती हैं ।

'योग्यताच्चद्धानाः क्रियाः संस्काराः इत्युच्यते' अतः संस्कार एक प्रकार की आध्यात्मिक सीढ़ियों का कार्य करते हैं जिसके द्वारा शरीर और उसके कार्य पूर्णता की प्राप्ति में सहायक होते हैं और इस प्रकार व्यक्ति के जीवन को परिष्कृत करने के लिए सोलह संस्कारों की व्यवस्था की गई है ।

संदर्भ सूची

1. एम.जी.पी.जी. कॉलेज, फिरोजाबाद ।
2. हिन्दू संस्कार पृ. 18
3. हिन्दू संस्कार पृ. 20
4. हिन्दू संस्कार पृ. 21
5. हिन्दू संस्कार पृ. 21
6. मनुस्मृति पृ. 2/16, 26, 29
7. गौतम स्मृति पृ. 8/21
8. व्यास स्मृति पृ. 1/14, 15
9. धर्मशास्त्रीय विषयों का परिशीलन पृ. 214
10. ऋग्वेद पृ. 10/14/16
11. धर्मशास्त्र का इतिहास पृ. 181, 182
12. अथर्ववेद पृ. 5/25/3
13. आश्वलयन गृह्मसूत्र पृ. 16/22
14. वायु पुराण 16/12
15. पारस्कर गृह्मसूत्र 1/14/2
16. मनुस्मृति 2/29
17. मनुस्मृति 2/30
18. पारस्कर गृह्मसूत्र 1/17?
19. मनुस्मृति 2/34?
20. आश्वलयन गृह्मसूत्र 1/17/12
21. वीरमित्रोदय संस्कार प्रकाश पृ. 261
22. मनुस्मृति 2/36, 37, 38
23. व्यासस्मृति 1/14
24. मनुस्मृति 2/246
25. मनुस्मृति 3/21
26. बौधायन गृह्मसूत्र 1/43
27. याज्ञवल्क्यस्मृति 1/13
28. पारस्कर गृह्मसूत्र 1/16/19
29. पारस्कर गृह्मसूत्र 2/6/26
30. शांखायन गृह्मसूत्र 1/14/5
31. मनुस्मृति 2/26, 27
32. यजुर्वेद 40/11
33. गीता 6/41
34. अथर्ववेद 11/4
35. अथर्ववेद 14/12